आगम बोध

भाग -2

मेरा सहज जीवन

अहो चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है ।
अनादि अनंत पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ॥ टेक॥

हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में ।
द्रव्य-दृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है ॥1॥

अनंतों शक्तियाँ उछलें, सहज सुख ज्ञानमय विलसें ।
अहो प्रभुता परम पावन, वीर्य का भी न पारा है ॥2॥

नहीं जन्मूँ नहीं मरता, नहीं घटता नहीं बढ़ता ।
अगुरुलघु रुप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है ॥3॥

सहज ऐश्वर्य मय मुक्ति, अनंतों गुण मयी ऋद्धि ।
विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है ॥4॥

किसी से कुछ नहीं लेना, किसी को कुछ न हीं देना ।
अहो निश्चिंत परमानन्दमय जीवन हमारा है ॥5॥

ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रुप है मेरा ।
परम निर्दोष समता मय, ज्ञान जीवन हमारा है ॥6॥

मुक्ति में व्यक्त है जैसा, यहाँ अव्यक्त है वैसा ।
अबद्धस्पृष्ट अनन्य, नियत जीवन हमारा है ॥7॥

सदा ही है न होता है, न जिसमें कुछ भी होता है ।
अहो उत्पाद व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ॥8॥

विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी ।
रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है ॥9॥

नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की ।
अहो परिपूर्ण निष्पृह ज्ञानमय जीवन हमारा है ॥10॥

आगम बोध

भाग–द्वितीय

संकलन-संपादन

(डॉ.) मनोज कुमार जैन, जबलपुर

M.Sc., M.A., Ph.D.

प्रकाशक

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

जबलपुर (म.प्र.)

कृति - आगम बोध पाठमाला भाग-2
संस्करण- प्रथम, मंगलवार, 6 मई 2015
षष्ठम् बाल संस्कार आवासीय शिक्षण शिविर पर प्रकाशित
आवृत्ति - 500 प्रतियां

विषय वस्तु

क्रम	नाम	पृष्ठ
1.	देवस्तुति	1
2.	पाप	3
3.	गति	6
4.	कषाय	11
5.	भक्ष्य-अभक्ष्य	14
6.	द्रव्य	19
7.	कथा खंड	22
8.	पद्य खंड	26

प्राप्ति स्थल -
श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जैन मंदिर
स्वाध्याय भवन, पायलवाला मार्केट
बड़ा फुहारा, जबलपुर (म.प्र.)
फोन : 0761-2401108 मोबा. 09893095524

पाठ 1

देव स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो सरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी॥

तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरत्‌यो फिरयो॥

धनि घड़ी यों धनि दिवस यों ही, धनि जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥

छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-युत कोटि रवि-छवि को हरैं॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥

मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारण तरण जी॥

जांचूँ नहीं सुरवास पुनि, नर, राज परिजन साथ जी।
बुध जाचहूँ तुब भक्ति भव-भव दीजिये शिवनाथ जी॥

यह स्तुति सच्चे देव अर्थात् वीतरागी एवं सर्वज्ञ अरहंत परमात्मा की है । भक्त उनके सामने प्रार्थना करता हुआ अपने भाव व्यक्त करता है कि हे प्रभु ! आपकी शरण में आकर पामर दीन-दुखी जीव भी पूर्ण पवित्र दशा को प्राप्त हो जाते है आप अपनी इसी कीर्ति के अनुरूप मेरी भी पामर दशा को दूरकर मेरे जन्म मरण का नाश करें ।

हे जिनेन्द्र भगवान ! मैंने आपको आज तक पहचाना नहीं, और दूसरे रागी - द्वेषी देवताओं को पूजता रहा। इस मिथ्या बुद्धि के कारण अपनी आत्मा को नहीं पहचाना एवं संसार में भ्रमण करता रहा। मैं अहितकारक बातों में ही अपना हित समझता रहा ।

इस संसार रूपी भयानक जंगल में कर्म रूपी शत्रु ने मेरा ज्ञान रूपी धन हरण कर लिया है। इस कारण अपने हित को भूलकर भ्रष्ट हो गया और दु:खदायी गतियों में भ्रमण कर रहा हूँ।

यह समय धन्य है, यह दिन धन्य है और आज मेरा जन्म भी धन्य हो गया है। आज मेरे महाभाग्य का उदय हुआ है, जो मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुये हैं।

हे भगवान! आपकी मुखमुद्रा वीतरागी है। आप नग्न दिगम्बर हैं, आपकी दृष्टि नासाग्र है, आप आठ प्रातिहार्य तथा अनंत गुणों से सहित हैं, करोड़ो सूर्यों की कांति भी आपके सामने फीकी पड़ जाती है।

हे भगवान! आपके दर्शन से मेरा मिथ्यात्व रूपी अंधकार नष्ट हो गया और आत्मज्ञान रूपी सूर्य का उदय हुआ है। मेरे हृदय में ऐसा उल्लास हुआ है जैसे किसी भिखारी को चिंतामणि रत्न मिलने पर होता है।

भक्त भगवान से विनती करता हुआ कहता है कि तीन लोक में सर्वोत्कृष्ट व पूज्यनीय आप ही है तथा भवसागर से आप स्वयं तरे है और जीवों को तारने में आप ही समर्थ है अत: मैं हाथ जोड़कर व मस्तक नवाकर आपके चरणों में विनय करता हूँ। कवि बुधजन जी कहते हैं कि हे भगवान! मुझे स्वर्ग, चक्रवर्ती पद तथा अन्य परिजनों के साथ की अब कोई भावना नहीं है। मैं अब यही चाहता हूँ कि जन्म-जन्मांतर में भी आपकी भक्ति मेरे चित्त में निरंतर बनी रहे ।हे मोक्ष के नाथ कृपया ऐसी यह भक्ति आप मुझे प्रदान कीजिये ।

पाठ 2

पाप

परिभाषा - दु:ख का कारण बुरा कार्य ही पाप है अर्थात् जिन कार्यों के करने से जीव दुर्गति का पात्र बनता है, जो जीव को बुरे रास्ते में डाल कर उसका पतन करा दे, ऐसे निंदनीय कार्य ही पाप कहलाते हैं। पाप के पांच भेद होते हैं। वे हैं - (1) हिंसापाप (2) असत्यपाप (3) चोरीपाप (4) कुशीलपाप (5) परिग्रह पाप ।

हिंसा पाप -

किसी जीव को मारना, सताना या उसका दिल दु:खाना हिंसा कहलाती है। यह द्रव्य हिंसा है, जिससे कोई दूसरा प्राणी दु:खी होता है तथा स्वयं में मोह-राग-द्वेष रूप कषाय भावों का उत्पन्न होना भाव हिंसा है, इससे जीव स्वयं दु:खी होता है। हिंसा पाप का फल नरक गति में जाने के रूप में मिलता है जहां जीव को बहुत लम्बे काल तक घोर दु:ख सहन करना पड़ता है।

असत्य पाप -

जिस बात को जैसा देखा, जाना और सुना हो, उसे वैसा न कहकर अन्यथा कहना असत्य कहलाता है। परन्तु सत्य बोलने के पहिले सत्य समझना आवश्यक है क्योंकि सच्ची समझ हुये बिना हम जो बोलेंगे, वह असत्य ही कहलायेगा। अत: सत्य बोलने के पहिले सत्य समझना आवश्यक है।

असत्य पाप का फल जीव को दुर्गति में जाकर घोर दु:खों को सहन करने के रूप में प्राप्त होता है।

चोरी पाप -

किसी की पड़ी हुई, भूली हुई, रखी हुई वस्तु को बिना उसकी आज्ञा लिये उठा लेना या उठाकर किसी को दे देना तो द्रव्य चोरी पाप है ही, परन्तु

परवस्तु को ग्रहण करने का भाव भी भाव चोरी पाप कहलाता है।

चोरी पाप के फल में जीव नरक, तिर्यन्च आदि दुर्गतियों में जाकर लम्बे काल तक दु:ख सहता है।

कुशील पाप -

पराई स्त्रियों को अपनी माँ-बहिन के समान न देखकर बुरी निगाह से देखना ही कुशील पाप कहलाता है। विषय वासना कुशील पाप है।

कुशील पाप के फल में जीव नरक गति में जाता है, जहाँ उसे आग में तपाये जाना आदि घोर दु:ख सहन पड़ते हैं।

परिग्रह पाप -

अनाप-शनाप रुपया-पैसा, मकान आदि पदार्थों को जोड़ना तथा उनके जोड़ने का भाव परिग्रह पाप कहलाता है । परिग्रह पाप के फल में जीव नरकों में जाकर घोर दु:खों को सहन करता है।

पापों से बचने के उपाय -

हिंसा आदि समस्त पाप मिथ्यात्व के कारण उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व अर्थात् उल्टी मान्यता, अर्थात् जब तक हम अपने आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं करेंगे, तब तक हमें पर पदार्थों को अपना मानने और उन्हें ग्रहण करके उनमें सुख मानने की झूठी वासना चलती रहेगी, तब तक समस्त पाप भी होते रहेंगे। अत: सबसे बड़ा पाप तो मिथ्यात्व है अतएव पापों को छोड़ने के लिये सर्वप्रथम तत्वज्ञान के अभ्यास से मिथ्यात्व छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये तभी हमारे जीवन से पापों का अभाव होगा।

इसके अतिरिक्त हमें निम्न बातों का भी ध्यान रखना चाहिये जिससे हम लौकिक जीवन में भी हिंसा आदि पाँचों पापों से बच सकें -

(1) वस्तुएँ उठाते-रखते समय सावधानी रखें।

(2) रात्रि में खान-पान न करके प्राकृतिक सूर्य प्रकाश में, दिन में ही खान-पान करना चाहिये।

(3) हिंसक परिणाम व वासना उत्पन्न करने में निमित्त सिनेमा, टीवी, वीडियो गेम, पत्र-पत्रिकाओं आदि से बचना चाहिये।

(4) बिना प्रयोजन फूल-पत्ती, पेड़-पौधे नहीं तोड़ना चाहिये।

(5) हमेशा सत्य बोलने की आदत डालकर हित-मित व प्रिय वचन ही बोलना चाहिये।

(6) व्यर्थ हंसी-मजाक, वाद-विवाद न करते हुये दूसरों को कठोर वचन नहीं बोलना चाहिये।

(7) पराई निन्दा, विकथा आदि व्यर्थ के वार्तालाप से बचना चाहिये।

(8) पराई वस्तु को कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

(9) पारदर्शी व अधूरे अश्लील वस्त्र, तड़क-भड़क वाले वस्त्र कभी नहीं पहनना चाहिये।

(10) खोटे व्यक्तियों की संगति नहीं करना।

(11) पुण्योदय से प्राप्त सामग्री में ही सन्तोष रखना चाहिये।

(12) दान देना, परोपकार करना जैसे अच्छे कार्यों में लगना चाहिये।

(13) प्रतिदिन देवदर्शन, पूजा, स्वाध्याय आदि कर्तव्यों का अवश्य ही पालन करना चाहिये।

प्रश्न-

1. पाप कितने होते है ? नाम गिनाइये ।
2. जीव घोर क्यों करता है ?
3. द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा किसे कहते है ?
4. सबसे बड़ा पाप कौन है और क्यों ?
5. पाँचों पापों का स्वरूप संक्षेप में समझाइये ?

पाठ 3

गति

पुत्र – पिताजी ! आज मंदिर में सुनाकि "चारों गति के मांहि प्रभु दु:ख पायो मैं घणों ।" ये चारों गतियाँ क्या हैं, जिनमें दु:ख ही दु:ख है ?

पिता – बेटा ! गति तो जीव की अवस्था-विशेष को कहते हैं । जीव संसार में मोटे तौर पर चार अवस्थाओं में पाये जाते हैं , उन्हें ही चार गतियाँ कहते हैं । जब यह जीव अपनी आत्मा को पहिचानकर उनकी साधना करता है तो चतुर्गति के दु:खों से छूट जाता है और अपना अविनाशी सिद्ध पद पा लेता है, उसे पंचम गति कहते हैं ।

पुत्र – वे चार गतियाँ कौन-कौन सी है ?

पिता – मनुष्य, तिर्यंच, नरक और देव ।

पुत्र – मनुष्य तो हम तुम भी हैं न ?

पिता – हम मुनष्यगति में हैं, अत: मनुष्य कहलाते हैं । वैसे हैं तो हम तुम भी आत्मा (जीव) ।

जब कोई जीव कहीं से मरकर मनुष्यगति में जन्म लेता है अर्थात् मनुष्य शरीर धारण करता है तो उसे मनुष्य कहते हैं ।

पुत्र – अच्छा, तो हम मनुष्य गति के जीव हैं । गाय, भैंस, घोड़ा आदि किस गति में हैं ?

पिता – वे तिर्यंचगति के जीव हैं । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, हाथी, घोड़े-कबूतर, मोर आदि पशु-पक्षी तो तुम्हें दिखाई देते हैं, वे सभी तिर्यंचगति में आते हैं ।

जब कोई जीव मरकर इनमें पैदा होता है तो वह तिर्यंच कहलाता हैं ।

पुत्र – जब मनुष्यों को छोड़ कर दिखाई देने वाले सभी तिर्यंच हैं तो फिर नारकी कौन हैं ?

पिता - इस पृथ्वी केनीचे सात नरक हैं । वहाँ का वातावरण बहुत ही कष्टप्रद है । वहाँ पर कहीं शरीर को जला देनेवाली भयंकर गर्मी और कहीं शरीर को गला देने वाली भयंकर सर्दी पड़ती है । भोजन-पानी का हमेशा पूर्ण रूप से अभाव है अत: वहाँ जीवों को भयंकर भूख, प्यास की वेदना सहनी पड़ती है । वे लोग तीव्र कषायी भी होते हैं, आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं, मारकाट मची रहती है ।

जो जीव मरकर ऐसे संयोगों में जन्म लेते हैं, उन्हें नारकी कहते हैं ।

पुत्र - और देव .....?

पिता - जिन जीवों के जैसे भाव होते हैं, उनके अनुसार उन्हें फल भी मिलता है । उनके उन्हें फल मिले, ऐसे स्थान भी होते हैं । जैसे पाप का फल भोगने स्थान नरकादि गति है, उसी प्रकार जो जीव पुण्य भाव करता है उनका फल भोगने का स्थान देवगति है । देवगति में मुख्यत: भोग-सामग्री प्राप्त होती है ।

जो जीव मरकर देवों में जन्म लेते हैं, उन्हें देवगति के जीव कहते हैं ।

पुत्र - अच्छी गति कौन-सी है ?

पिता - जब बता दिया कि चारों गति में दु:ख ही है तो फिर गति अच्छी कैसे होगी ? ये चारों संसार हैं ।

इसे छोड़कर जो मुक्त हुए, वे सिद्ध जीव पंचम गति वाले हैं । एकमात्र पूर्ण आनंदमय सिद्ध गति ही है ।

पुत्र - मनुष्यगति को अच्छी कहो न ? क्योंकि इससे ही मोक्षपद मिलता है ?

पिता - यदि यह अच्छी गति होती तो सिद्ध जीव इसका भी परित्याग क यों करते ? अत: चतुर्गति का परिभ्रमण छोड़ना ही अच्छा है ।

पुत्र - जब इन गतियों का चक्कर छोड़ना ही अच्छा है तो फिर यह जीव इन गतियों में घूमता ही क्यों है ?

पिता – जब अपराध करेगा तो सजा भोगनी ही पड़ेगी ?

पुत्र – किस अपराध के फल में कौन-कौन सी गति प्राप्त होती है ?

पिता – बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह रखने का भाव ही ऐसा अपराध है जिससे इस जीव को नरक जाना पड़ता है तथा भावों की कुटिलता अर्थात् मायाचार, छल-कपट तिर्यञ्चायु बंध के कारण हैं ।

पुत्र – मनुष्य तथा देव .....?

पिता – अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह रखने का भाव और स्वभाव की सरलता मनुष्यायु के बंध के कारण हैं । इसी प्रकार, संयम के साथ रहने वाला शुभभावरूप रागांश और असंयमांश मंदकषायरूप भाव तथा अज्ञानपूर्वक किये गये तपश्चरण के भाव देवायु के बंध के कारण हैं ।

पुत्र – उक्त भाव बंध के कारण होने से अपराध ही हैं तो फिर निरपराध दशा क्या है?

पिता – एक वीतराग भाव ही निरपराध दशा है, अत: वह मोक्ष का कारण है।

पुत्र – इन सबके जानने से क्या लाभ है ?

पिता – हम यह जान जावेंगे कि चारों गतियों में दु:ख ही दु:ख हैं, सुख नहीं और चतुर्गति भ्रमण का कारण शुभाशुभ भाव है तथा इनसे छूटने का उपाय एक वीतराग भाव है । हमें वीतराग भाव प्राप्त करने के लिए ज्ञानस्वभावी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए ।

प्रश्न-

1. गति किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार की होती है ?
2. तिर्यंचगति किसे कहते हैं ?
3. नरकगति के वातावरण का वर्णन कीजिए । ऐसे कौन से कारण हैं, जिनसे जीव नरकगति प्राप्त करता है ?
4. क्या देवगति में भी सुख नहीं है ? सकारण उत्तर दीजिए ।
5. सबसे अच्छी गति कौन-सी है ? युक्तिसंगत उत्तर दीजिए ।

निगोद

एक शरीर के आश्रय से जब अनंत जीव बराबरी से होते हैं, तो उन्हें निगोद कहते हैं। अनन्त निगोदिया जीव एक समय में एक शरीर में उत्पन्न होते हैं, मरते हैं। निगोदिया जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुये हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने से वे हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनते हैं।

निगोदिया जीव हमारी एक श्वास के काल में 18 बार जन्मते-मरते हैं, अत: निगोद में सबसे अधिक दु:ख है। निगोदिया जीव तिर्यञ्च गति के ही जीव है, उनके एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

निगोद के नित्य निगोद और इतर निगोद के नाम से दो भेद हैं। जो जीव अनादि से आज तक निगोद से निकले ही नहीं, उसे नित्य निगोद कहते हैं तथा नित्य निगोद से निकलकर अन्य कोई भी पर्याय धारण कर पुन: निगोद में पहुँच जाना इतर निगोद कहलाता है। भावत: दोनों में कोई अंतर नहीं है। नित्य निगोद से 6 महीने 8 समय में 608 जीव बाहर निकलते रहते हैं।

मिथ्यात्व महापाप के फल में जीव निगोद दशा को प्राप्त हो जाता है। अनादि से प्रत्येक जीव निगोद में ही था। कोई महाभाग्य से जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय दशा को प्राप्त करता है तथा यहाँ आत्महित न करे तो पुन: निगोद में पहुँच जाता है जहाँ पुन: बहुत लम्बे काल तक वह समय बिताता है, अत: आत्महित करके सिद्ध अवस्था रूप पंचमगति ही प्राप्त करने लायक है।

अपनी उन्नति करने में इतना समय लगाओं कि दूसरों की निंदा करने के लिये समय ही न मिले ।

चार गतियों के चित्र

मनुष्यगति

तिर्यन्चगति

नरकगति

देवगति

पाठ 4

कषाय

परिभाषा - जो आत्मा को कसे अर्थात् दु:ख दे, वह कषाय है। कष् - = संसार और आय = लाभ, अर्थात् जिससे संसार की प्राप्ति हो, चतुर्गति रूप संसार की वृद्धि हो, उसे कषाय कहते हैं। आत्मा में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष रूप विकारी परिणाम ही कषाय हैं। कषायों से आत्मा का पतन हो जाता है। कषाय आत्मा का विभाव है, स्वभाव नहीं।

कषाय के भेद - कषाय के मुख्य चार भेद हैं -

(1) क्रोध कषाय (2) मान कषाय (3) माया कषाय (4) लोभ कषाय

1. क्रोध कषाय

अपने या पर के घात आदि करने रूप क्रूर परिणाम को क्रोध कहते हैं। गुस्सा करना, रोष, क्षोभ, आवेश आदि इसी के रूप हैं।

तीव्र क्रोध में व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है। इससे किसी दूसरे का अहित हो या न हो, स्वयं का अहित हो ही जाता है। क्रोध जलते हुये अंगारे की तरह है, जिसे दूसरे की तरफ फेंकने पर पहले अपना हाथ तो जल ही जाता है। उदाहरण - (1) परम तपस्वी द्वीपायन मुनि क्रोध के कारण ही देवदुर्गति को प्राप्त हुये। (2) राजा अरविन्द क्रोध के कारण स्वयं अपनी तलवार के घात से मरण को प्राप्त हो नरकगामी हुआ।

2. मान कषाय

अहंकार, गर्व, घमण्ड करने को ही मान कहते हैं अथवा दूसरों के प्रति नम्र वृत्ति का न होना मान कषाय है। मानी सदा दूसरों को नीचा दिखाने का भाव रखता है। ज्ञान, पूजा, कुल, रूप, धन, बल आदि का मद जीव के होता

है। व्यक्ति का मान प्रसिद्ध होने पर कोई उसका दिल से सम्मान नहीं करता। उदाहरण - (1) मारीचि को अहंकार के कारण अनेक दुर्गतियों में भटकना पड़ा। (2) रावण विद्याधर अहंकार के कारण मरकर नरक गया।

3. माया कषाय

छल-कपट, धोखाधड़ी के परिणाम मायाचारी कहलाते हैं। दूसरों को ठगने के लिये जो कुटिलता, छल-कपट, षडयंत्र आदि करना इसी माया कषाय का रूप है। मायाचारी जीव के मन में कुछ और होता है, वह कहता कुछ और है तथा करता उससे भी अलग है। मायाचारी के परिणामों में सरलता, ऋजुता नहीं होती है। मायाचारी किसी प्रकार से अपने इष्ट कार्य की सिद्धि करना चाहता है ।

मायाचारी जीव के छल प्रगट हो जाने पर कोई उसका विश्वास नहीं करता है। मायाचारी जीव के सभी धार्मिक अनुष्ठान जैसे पूजा, दान आदि सभी कार्य अकार्यकारी होते हैं। उदाहरण - (1) मायाचार के कारण मृदुमति मुनि हाथी की पर्याय को प्राप्त हुये। (2) नारद नामक महापुरुष नरक गति को प्राप्त हुये।

4. लोभ कषाय

धन-धान्यादि इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिये तीव्र आकांक्षा या गृद्धता लोभ कषाय है। तृष्णा या लालच इसी के पर्यायवाची शब्द हैं। यह बहुत ही खतरनाक कषाय है, इसे पाप का बाप कहा जाता है। लोभी किसी भी वस्तु को देखकर 'यह मुझे मिल जाये' सदा यही सोचा करता है। लोभी तृष्णा की आग में झुलसकर, धनादि का न तो स्वयं उपयोग करता है, न दूसरों को करने देता है, जोड़-जोड़कर धन रखता है और अंत में संक्लेश पूर्वक मरण कर दुर्गति को चला जाता है। लोभ कषाय कारण है और परिग्रह पाप उसका कार्य है। उदाहरण - सत्यघोष मंत्री लोभ से मरकर सर्प की पर्याय में पैदा हुआ।

कषाय उत्पन्न होने का कारण

मुख्यतया मिथ्यात्व के कारण कषायें उत्पन्न होती हैं। मिथ्यात्व अर्थात् उल्टी मान्यता के कारण जब हमें परपदार्थ इष्ट या अनिष्ट लगते हैं, तब राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं और इसी कारण कषायें उत्पन्न होती हैं। पर पदार्थों को भला जानकर चाहना राग है तथा पर पदार्थों को बुरा जानकर उन्हें दूर करना द्वेष है और यही कषायों के उत्पन्न होने का कारण है।

जब हम ऐसा मानते हैं कि इसने मेरा बुरा किया तब क्रोध कषाय तथा दुनिया की वस्तुएँ मेरी, मैं इनका स्वामी हूँ, ऐसा मानने पर मान कषाय पैदा होती है। पर पदार्थों में सुख बुद्धि होने से उन्हें ग्रहण करने के लिये मायाचारी और लोभ होता है।

कषाय मिटे कैसे?

कषाय आत्मा का स्वभाव नहीं, विभाव है, ऐसा जानकर तत्त्वज्ञान के अभ्यास से जब परपदार्थ न तो अनुकूल लगे और न ही प्रतिकूल लगे तब उनके ग्रहण करने, उन्हें अपना मानने का भाव नहीं रहेगा तो कषाय भी उत्पन्न नहीं होगी अत: अपनी आत्मा को जानकर, पहिचानकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिये। उसी से कषाय मिटेगी।

प्रश्न-

1. कषाय किसे कहते है ? ये कितनी होती है ।
2. कषाय से हानि क्या है ?
3. क्या कषाय आत्मा का स्वभाव है ?
4. कषाय क्यों उत्पन्न होती है ? वे मिटे कैसे ।
5. आत्मा का स्वभाव क्या है ?

पाठ 5

सदाचार

अ. भक्ष्य-अभक्ष्य

सुबोध - चलो भाई प्रबोध! आज चौराहे पर आलू की चाट खाने का मन कर रहा है।

प्रबोध - नहीं भाई! आलू की चाट, वह भी चौराहे पर। आलू तो सर्वथा अभक्ष्य है तथा बाजार का सामान भी खाने लायक नहीं है।

सुबोध - अभक्ष्य? यह क्या होता है? यह क्यों नहीं खाना चाहिये? मुझे बताओ।

प्रबोध - जो खाने योग्य सो भक्ष्य तथा जो नहीं खाने योग्य सो अभक्ष्य। अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से हिंसादि महादोष उत्पन्न होते हैं अत: तीव्र पाप बंध होता है तथा राग की तीव्रता भी होती है अत: अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।

सुबोध - फिर कौन-कौन से पदार्थ अभक्ष्य हैं? मुझे बताओ।

प्रबोध - मैं तुम्हें निम्न चार्ट से अभक्ष्य पदार्थों के संबंध में समझाता हूँ :

1. **त्रसघात अभक्ष्य** - जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता है वे त्रसघात अभक्ष्य हैं। जैसे - बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर तथा उदुम्बर फल। इनके मध्य त्रस जीव राशि होती है।
2. **बहुघात अभक्ष्य** - जिन पदार्थों के खाने से बहुत (अनंत) स्थावर जीवों का घात होता है, वे सभी पदार्थ बहुघात अभक्ष्य हैं, जैसे - आलू, प्याज, गाजर, मूली, लहसुन, अदरक, शकरकंद आदि पदार्थ। इनमें अनंत स्थावर निगोदिया जीव होते हैं।
3. **अनुपसेव्य अभक्ष्य** - जिनका सेवन उत्तम पुरुष बुरा समझे, वे लोकनिंद्य पदार्थ अनुपसेव्य हैं। जैसे - लार, मल-मूत्र आदि इनका सेवन तीव्र राग के बिना नहीं हो सकता।

4. **नशाकारक अभक्ष्य** - जो पदार्थ नशा बढ़ाने वाले होते हैं, वे नशाकारक अभक्ष्य हैं। जैसे- गुटखा, तम्बाकू, अफीम, भांग, गांजा, शराब, सिगरेट, बीड़ी, चाय, कॉफी आदि।

5. **अनिष्ट कारक अभक्ष्य** - जिन पदार्थों के सेवन से शरीर के स्वास्थ्य को नुकसान होता है, वे सभी पदार्थ अनिष्ट कारक अभक्ष्य हैं। जबकि हम ये जानते हैं कि ये नुकसानदायक हैं। इनका सेवन तीव्र राग होने पर होता है, जैसे - सर्दी होने पर भी आइसक्रीम खाना।

प्रबोध - आशा है तुम अभक्ष्य पदार्थों के सम्बंध में समझ गये होगे ?

सुबोध - समझ गया! अच्छी तरह समझ गया। मैं अब आगे से किसी भी अभक्ष्य पदार्थ का सेवन नहीं करूंगा तथा व्यर्थ ही पाप नहीं बांधूंगा।

ब. क्या होटल, बाजार का खाते हो?

बाजार के बने खाने-पीने के सामानों में हाथ-पैर का पसीना, मैल, कीड़े-मकोड़े, मक्खी, मच्छर आदि जीव गिर जाते हैं व अन्य गंदगियाँ मिल जाती हैं। होटल अथवा ठेले वाले साफ-सफाई का ध्यान नहीं रखते तथा वे अनछने गंदे पानी का प्रयोग अपनी खाद्य सामग्री बनाने में करते है । वही गंदगी खाद्य पदार्थों के द्वारा हमारे शरीर में पहुँचकर तरह-तरह की बीमारियों को उत्पन्न करती है । इसी तरह आजकल तो अब लगभग सभी खाद्य पदार्थों में जानवरों का खून, हड्डी पावडर, चर्बी आदि मांसाहारी पदार्थों का मिश्रण किया जाने लगा है।

अत: बाजार का तथा होटल, ठेले आदि का कोई भी पदार्थ खाने-पीने लायक नहीं है। इनके सेवन से हमारे शरीर का स्वास्थ्य तो खराब होता ही है साथ ही हिंसादि पाप भी लगता है।

स. सर्वोत्कृष्ट आहार-जैनाहार (शाकाहार)

जैन आहार में जीव-जन्तुओं से रहित बिना घुना अनाज, चावल, दालें, तिलहन, मेवा और सूखे फल तथा साफ शोधे मसाले लिये जाते हैं । ये सर्वोत्तम शाकाहार है।

वनस्पति से उत्पन्न खाद्य को शाकाहार कहते हैं। जो अनाज खेत में पैदा हो और जो साग-सब्जी, फल वृक्ष पर या खेत में फलते हों, वे पदार्थ ही शाकाहार में सम्मिलित होते हैं।

जैन आहार में अनंत जीवों से युक्त कंदमूल खाने का पूर्णत: निषेध है। जैन आहार विज्ञान का मूल आधार अहिंसा है। अत: आहार के विधान में सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के घात का तो प्रश्न ही नहीं उठता और सभी त्रस जीवों के घात से भी बचाया गया है, साथ ही स्थावर जीवों के घात से भी बचा जाना सुनिश्चित किया गया है।

विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भलीभांति सुनिश्चित हो चुका है कि जैन आहार ही मानव जीवन के लिये उत्तम आहार है, जो प्रोटीन, विटामिन, रोग प्रतिरोधक क्षमता व जबरदस्त जीवन शक्ति से युक्त होता है। शाकाहार अहिंसक भी है अत: यही हमारे लायक है।

सर्वश्रेष्ठ आहार (भोजन) तो वह है, जो न्यायपूर्वक कमाई के धन से बनाया गया हो,विवेक-यत्नाचार पूर्वक बनाया गया हो, वात्सल्य पूर्वक परोसा-खिलाया गया हो तथा अनासक्ति भाव से ग्रहण किया गया हो।

देव दर्शन के बिना बाह्य जैन नहीं,
और जो आत्म दर्शन नहीं करता, वह भाव जैन नहीं ।

जिसे अपने चैतन्य नाथ का भान नहीं,
एवं जिननाथ के प्रति भक्ति नहीं, वह अनाथ है ।

द. जल

महत्व, उपयोग व सावधानियाँ

1. व्यक्ति घी, दाल, रोटी, सब्जी आदि अनेक पदार्थ छोड़ने पर भी अनेकों वर्षों तक जी सकता है लेकिन जल अर्थात् पानी के बिना 5-10 दिन से ज्यादा नहीं जी सकता।
2. पानी अत्यंत अमूल्य पदार्थ है क्योंकि पानी के बिना नहाना, धोना, भोजन बनाना व पचाना खेती करना आदि कुछ भी कार्य नहीं हो सकता।
3. संसार की किसी भी वस्तु की शुद्धि पानी के बिना नहीं हो सकती है।

उपयोग -

1. अनछने जल में असंख्यात जीव राशि होती है, अत: बिना छना जल प्रयोग करने पर उस जीवराशि का घात हो जाता है।
2. पानी को सदैव छानकर ही उपयोग में लेना चाहिये। पानी छानने के लिये सूती (लट्ठा) मोटे कपड़े (जिसके आर-पार प्रकाश न जा सके) को दोहरा करके पानी छानना चाहिये तथा सावधानीपूर्वक बिलछानी (जीवानी) देना चाहिए एवं पानी जहाँ से निकाला हो अथवा जहाँ पानी बहकर जा रहा हो, उसी में जीवानी वापस पहुँचाना चाहिये। ध्यान रहे, पानी छानने का मूल प्रयोजन जीव हिंसा से बचना ही है।
3. छने पानी की मर्यादा 48 मिनट की होती है। छने पानी में अनार का छिलका, हरड पावडर, सौंफ, लौंग आदि सामग्री मिलाने पर जिससे उसका स्वाद व रंग बदल जाये अथवा हल्का गर्म करने पर उसकी मर्यादा छ: घंटे की हो जाती है। पानी को तेज गर्म करने पर मर्यादा 12घंटे की

तथा तीन उबाल लेकर गर्म करने पर उसकी मर्यादा 24 घंटे की हो जाती है।

सावधानियाँ व पानी कैसे बचायें :-

1. नहाने, कपड़ा धोने, पौंछा लगाने, मंजन करने आदि घरेलू कार्यों के लिये कम से कम पानी का उपयोग करना चाहिए।
2. टंकी भरते समय मशीन बंद करने का ध्यान रखें, जिससे टंकी भरने के बाद व्यर्थ पानी न बहे।
3. नलों में टोंटी लगाकर पानी को व्यर्थ बहने से बचाया जा सकता है।
4. पानी उतना ही निकालें, जितना कि हमारे उपयोग के लिये आवश्यक है।
5. सभी कार्यों में विवेकपूर्वक पानी का उपयोग करें, जिससे पानी कम खर्च हो। ध्यान रहे कि व्यर्थ ही पानी ढोलने या बहाने में हमारी असावधानी होने से हमें तीव्र पाप का बंध होता है।
6. इसी प्रकार बिजली (Electricity) के दुरूपयोग से भी बचना चाहिये । बिजली बनाने में अनंत जीवों की हिंसा होती है । अत: बिजली का व्यर्थ उपयोग करने से हिंसा, पाप भी लगता है । इसी प्रकार कागज-पेन आदि का कम से कम एवं आवश्यक उपयोग ही करना चाहिये इन्हें व्यर्थ बर्बाद नहीं करना चाहिये ।

विश्व में ऐसा कोई दोष नहीं,
जो स्वभाव की आराधना से दूर न हो सके ।

पाठ 6

क्या आप जानते है ?

द्रव्य

प्र.1. यह विश्व कैसे बना है?

उत्तर- विश्व छः द्रव्यों के समूह का नाम है। विश्व, दुनिया, जगत, संसार, वर्ल्ड, लोक आदि ये सब पर्यायवाची शब्द हैं।

प्र.2. विश्व क्या कभी नष्ट हो जायेगा ?

उत्तर- नहीं! चूंकि द्रव्य कभी नष्ट नहीं होते अतः विश्व भी कभी नष्ट नहीं होगा।

प्र.3. इस विश्व को बनाया किसने व इसे चलाता कौन है?

उत्तर- यह विश्व अनादि, स्वयंसिद्ध है, इसे किसी ने बनाया नहीं है, न इसे कोई चलाता है और न ही इसे कोई नष्ट कर सकता है।

प्र.4. भगवान का काम क्या है ?

उत्तर- भगवान का काम केवल जानना-देखना और अपने आत्मा में लीन रहकर अनंत सुख-निराकुलता को भोगना है।

प्र.5. विश्व में कौन-कौन से पदार्थ हैं?

उत्तर- विश्व में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल, ये छः जाति के द्रव्य रहते हैं।

प्र.6. द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य गुणों के समूह को कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य एक स्वतंत्र इकाई (यूनिट) रहते हुये अनंत योग्यताओं (क्वालिटीज) को धारण करता है, ये योग्यतायें ही द्रव्य के गुण हैं इस प्रकार द्रव्य अनंत गुणमय पदार्थ होता है। द्रव्य, पदार्थ, वस्तु, मैटर, इत्यादि यह सब पर्यायवाची नाम हैं।

प्र.7. द्रव्य कितने होते हैं?

उत्तर- द्रव्य छः होते हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

प्र.8. जीव द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मा को ही जीव द्रव्य कहते हैं।

प्र.9. पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसमें स्पर्श, रस, गंध व वर्ण पाया जावे उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं।

प्र.10. धर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- स्वयं चलते हुये जीवों और पुद्गलों को जो चलने में सहायक हों, उसे धर्म द्रव्य कहते हैं जैसे स्वयं चलती मछली को चलने में जल अथवा रेल को चलने में पटरी सहायक होती है।

प्र.11. अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- चलकर स्वयं रुकते हुये जीवों और पुद्गलों को ठहरने में जो सहायक हो, उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं । जैसे पथिक को वृक्ष की छाया अथवा रेल को रुकने के लिये स्टेशन सहायक होता है।

प्र.12. आकाश द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जो सब द्रव्यों के रहने में निमित्त हो, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। ऊपर-नीचे, अगल-बगल चारों तरफ आकाश द्रव्य फैला है।

प्र.13. काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर- जगत के समस्त पदार्थों के अवस्था परिवर्तन-परिणमन में जो द्रव्य निमित्त हो, उसे काल द्रव्य कहते हैं। इसका दूसरा नाम समय (टाइम) भी है।

प्र. 14. ये द्रव्य कुल कितने हैं?

उत्तर- संख्या अपेक्षा जीव द्रव्य अनंत, पुद्गल द्रव्य अनंतानंत; धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य व आकाश द्रव्य एक-एक तथा काल द्रव्य लोक प्रमाण असंख्यात हैं।

प्र. 15. इन द्रव्यों में रूपी-अरूपी द्रव्य कौन-कौन से हैं?

उत्तर- इन छः द्रव्यों में एक मात्र पुद्गल द्रव्य ही रूपी या मूर्तिक है। इसी कारण से वही हमें दिखाई देता है तथा इन्द्रियों के द्वारा भी इन्हीं का ही ज्ञान होता है। तथा शेष जीव आदि पांच द्रव्य अरूपी या अमूर्तिक हैं। एक जीव द्रव्य को छोड़कर शेष पांच द्रव्य अजीव-अचेतन हैं।

विश्व को जानने से लाभ

1. यह विश्व स्वयंसिद्ध होने से अनादि-अनंत है । इसीलिए इस विश्व के नाश होने का भय मिट जाता है ।
2. इस जगत का कर्ता-धर्ता-हर्ता ईश्वर है ऐसी भ्रांति निकल जाती है ।
3. भगवान संबंधी सच्ची भक्ति प्रकट होती है ।
4. भगवान से भोगों की भीख मांगने की अथवा इच्छित कार्य पूरे होने की भिखारी वृत्ति का अभाव हो जाता है ।
5. जिनेन्द्र भगवान द्वारा बताये हुये धर्म की श्रद्धा विशेष दृढ़ होती है और रागी-द्वेषी देवी-देवताओं का बहुमान नहीं रहता ।

पाठ 7

कथा खंड

(अ) भगवान महावीर

भगवान महावीर इस युग के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर हैं। भगवान तो वे पूर्ण वीतरागी व सर्वज्ञ बनने के बाद हुये। आज से लगभग 2600 वर्ष पहले चैत्र-शुक्ल त्रयोदशी के दिन नाथ वंश के राजा सिद्धार्थ और उनकी रानी प्रियकारिणी त्रिशला के कुण्डग्राम स्थित महल में एक सुन्दर प्रतिभाशाली, अतुलबल सम्पन्न बालक के रूप में उनका जन्म हुआ था। अन्य तीर्थंकरों के समान उनका भी इन्द्रादि के द्वारा जन्मोत्सव अत्यन्त ठाठ-बाट से उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न किया गया तथा उनका वर्धमान नाम रखा गया। सौधर्म इन्द्र ने पाण्डुक शिला पर जन्माभिषेक के पश्चात् उन्हें वीर के नाम से संबोधित किया।

वे जन्म से ही आत्मज्ञानी, मति-श्रुत-अवधि तीन ज्ञान के धारी, विवेकी, निर्भयता आदि गुण सम्पन्न थे। तीस वर्ष की अवस्था में तीव्र वैराग्य होने के कारण वे नग्न-दिगम्बर, आत्म-साधनारत लोकोत्तर साधु हो गये। बारह वर्ष तक मौनपूर्वक अखण्ड आत्म-साधना के बाद एक दिन पूर्ण स्वरूप लीनता की दशा में मुनि वर्धमान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार ब्यालीस वर्ष की आयु में वे वीतरागी सर्वज्ञ भगवान बन गए।

इसके बाद लगातार तीस वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में समवशरण सहित विहार के समय दिव्यध्वनि के द्वारा उनका धर्मोपदेश चलता रहा। अंत में बहत्तर वर्ष की अवस्था में बिहार स्थित पावापुरी नामक क्षेत्र से कार्तिक कृष्ण अमावस्या (दीपावली) के दिन आत्मध्यान में मग्न भगवान वर्धमान महावीर का निर्वाण हो गया अर्थात् वे इस दिन अरहन्त भगवान से सिद्ध

भगवान बन गए। उनके वर्धमान, वीर, अतिवीर, सन्मति और महावीर ये पाँच नाम प्रसिद्ध हैं।

भगवान महावीर की प्रमुख शिक्षाएँ -

(1) सभी आत्माएँ बराबर हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

(2) भगवान कोई अलग नहीं होते, जो जीव पुरुषार्थ करे, वही भगवान बन सकता है।

(3) भगवान जगत की किसी भी वस्तु का कुछ कर्ता-धर्ता-हर्ता नहीं हैं, मात्र जानते है।

(4) हमारे आत्मा का स्वभाव भी देखना-जानना है, कषाय आदि करना नहीं है।

(5) कभी किसी का दिल दु:खाने का भाव मत करो।

(6) झूठ बोलना और झूठ बोलने का भाव करना पाप है।

(7) चोरी करना और चोरी करने का भाव करना बुरा काम है।

(8) संयम से रहो, क्रोध से दूर रहो और अभिमानी मत बनो।

(9) छल-कपट करना और भावों में कुटिलता रखना बहुत बुरी बात है।

(10) लोभी व्यक्ति सदा दु:खी रहता हैं।

(11) हम अपनी ही गलती से दु:खी हैं और अपनी भूल सुधार कर सुखी हो सकते हैं।

अपने दोषों के कारण एवं कर्ता तुम स्वयं ही हो,
विश्व में अन्य कोई नहीं ।

(ब) वसु राजा की कथा

असत्य पाप का फल

काफी समय पहले स्वस्तिकावती नामक नगरी में विश्वावसु राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम श्रीमती था। उन दोनों का वसु नामक पुत्र था। उसी नगरी में क्षीरकदम्ब नामक एक उपाध्याय (शिक्षक) था। वह जिनेन्द्र भगवान का परम भक्त व धर्मात्मा था। उसके पर्वत नामक एक पुत्र था जो बुद्धिहीन व दुराचारी था। राजकुमार वसु, पर्वत तथा एक जिनेन्द्र-भक्त ब्राह्मण नारद क्षीरकदम्ब के पास गुरुकुल में रहकर अध्ययन करते थे।

अध्ययन के उपरान्त राजकुमार वसु व नारद अपने-अपने घर चले गये। कुछ समय बाद राजा विश्वावसु ने जिन दीक्षा धारण कर ली तथा वसु राजा हो गया। क्षीरकदम्ब भी तपस्वी हो गया तथा उसकी जगह पर्वत पढ़ाने लगा। राजा वसु ने अपने सिंहासन के पाये उच्चकोटि के स्फटिक के बनवा रखे थे, जिसके कारण उसका सिंहासन आकाश में लटका दिखाई देता था और उसकी ख्याति न्याय प्रिय राजा के रूप में फैल गयी थी।

एक दिन नारद भ्रमण करते हुये वापस अपने गुरुकुल आया और उसने वहाँ पर पर्वत को "अज" शब्द का अर्थ "बकरा" पढ़ाते हुये देखा जबकि "अज" शब्द का अर्थ पुराना धान होता है। उसने पर्वत की बात का विरोध किया परन्तु पर्वत अपनी बात पर अड़ा रहा । तब दोनों ने तय किया कि राजा के पास चलकर फैसला किया जावे। पर्वत की माँ को पता चला तो वह घबराई और वसु राजा के पास जाकर उसके पास रखा हुआ एक अपना पुराना वर मांगा और पर्वत के पक्ष में फैसला करने को कहा।

नियत समय पर राजसभा में पर्वत व नारद पहुँचे व पूरी बात राजा वसु के सामने रखी गयी। यद्यपि राजा वसु यह जानता था कि "अज" शब्द का अर्थ बकरा नहीं, पुराना धान ही होता है, फिर भी उसने पर्वत के पक्ष में फैसला दिया । पर्वत के पक्ष में बोलते ही उसके सिंहासन के पाये टूट कर गिर गये और उसका सिंहासन जमीन पर आ गया। यह देखकर राजा को लोगों ने फिर सही फैसला करने को कहा तथा उसे समझाया कि "अज" शब्द का अर्थ "बकरा" करने पर भविष्य में घोर हिंसा होगी क्योंकि लोग यज्ञ में पुराने धान की जगह बकरे से होम करने लगेंगे, परन्तु वसु राजा की बुद्धि को ग्रहण लग चुका था । उसने फिर कहा कि मेरे गुरु ने "अज" शब्द का अर्थ बकरा ही बताया था। इतना कहते ही उसका सिंहासन जमीन पर गिर पड़ा जबकि उसने सम्पूर्ण राज्य में यह प्रसिद्ध कर रखा था कि उसका सिंहासन उसके सत्य बोलने के कारण ही आकाश में टिका है। तब नारद ने उसे कहा कि महाराज अब भी अवसर है, आप सत्य बोल दीजिये परन्तु नरकगामी राजा वसु को यह बात अभी भी समझ में नहीं आई और उसने पुन: "अज" शब्द का अर्थ "बकरा" बताया। प्रकृति को यह अन्याय सहन नहीं हुआ और उसके इतना कहते ही सिंहासन धरती में पूरी तरह से धंस गया। राजा की मौत हो गयी और वह मरकर नरक गति में चला गया। कालांतर में पर्वत भी मरकर नरक गया तथा नारद स्वर्ग गति में गया।

शिक्षा- कभी भी लोभवश या चाहे जैसी विपत्ति आये परन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये। असत्यादि पाप का फल दुर्गति में गमन होता है।

आलस छोड़ो, क्रिया सुधारो, ज्ञानाभ्यास करो ।

पाठ 8

पद्य खंड (अ)

अष्टमूलगुण

सर्वप्रथम ये गुण होते हैं, मूल इसीलिये इन्हें कहते हैं।
मूल बिना ज्यों वृक्ष न होता, इन बिन त्यों जैनी न होता॥
श्रद्धा-ज्ञान-चरण आतम का, निश्चय से गुण मूल स्वयं का।
आठ भेद व्यवहार कहाता, इनका पालन हृदय से भाता॥

मद्य त्याग मूलगुण

सड़ी गली जो मदिरा पीते
बुद्धि भ्रष्ट कर पागल होते।
उन्हें हिताहित कुछ न होता,
इसका तजना पहला होता॥१॥

मांस त्याग मूलगुण

त्रस जीवों का घात करें जो,
मांस पिण्ड से पेट भरें जो।
वे निज तन-मन-धर्म नशाते,
इसे त्याग दूजा गुण पाते॥२॥

मधु (शहद) त्याग

वमन और मलमूत्र सहित जो,
मधुमक्खियों का भोजन वह वो।
उनको दु:ख पहुंचाकर पाते,
इसे त्याग तीजा गुण पाते॥३॥

रात्रिभोजन त्याग

शुद्ध साफ दिन में बस खाओ
और रात में कभी न खाओ।
रात्रि भोजन त्याग रहा ये
श्रेष्ठ मूलगुण है चौथा ये॥४॥

पंच उदुम्बर फल त्याग

बड़-पीपल-पाकर-ऊमर
को पांच उदुम्बर फल कठूमर को।
जीव दया रख कभी न
खाना यही मूलगुण पंचम माना॥५॥

पंच परमेष्ठी भक्ति

श्री अरहंत-सिद्ध-आचारज,
उपाध्याय व साधु पद रज
नित परमेष्ठी पांचों भजना,
पूज्य मूलगुण षष्टम कहना॥६॥

जीव दया पालन

जग में जितने जीव रहे हैं,
अपने जैसे सभी जीव हैं।
मैत्री करुणा उनपर लाना,
जीवदया गुण सप्तम माना।।7।।

छना जल पीना

बहुत जीव पानी में रहते,
नहीं छानो तो वे सब मरते।
जल उपयोग छानकर करना,
यही मूलगुण अष्टम धरना॥८।।

मद्य-माँस-मधु-रात्रिभोजन, पंच उदुम्बर तजना सब जन।
दया धरो,जिनवर गुण गाओ, पियो छना जल सुव्रत पाओ॥
दया धर्म जिसको पल जाये, जीवन भी सार्थक हो जाये।
अष्ट मूलगुण को अपनाओ, जैनी सच्चे तब कहलाओ॥

नोट :- मद्य-माँस-त्याग व पंच उदुम्बर फल के त्याग को भी द्वितीय प्रकार से अष्ट मूलगुण कहा गया है।

(ब) जिनवाणी स्तुति

सवैया - मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा-पर भासवे को, भानु सी बखानी है॥
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध विधि भानवे को।
स्व-पर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है॥

दोहा - हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन-रैन।
जो तेरी शरणा गहे, सो पावे सुख चैन॥
जा वाणी के ज्ञान तैं, सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नवों, सदा देत हो ढोक॥

अर्थ - हे जिनवाणी रूपी सरस्वती! तुम मिथ्यात्व रूपी अंधकार का नाश करने के लिये तथा आत्मा और पर पदार्थों का सही ज्ञान कराने के लिये सूर्य के समान हो।

छहों द्रव्यों का स्वरूप जानने के लिये, कर्मों की बन्ध पद्धति का ज्ञान कराने में, निज-पर की सच्ची पहिचान कराने में तुम्हारी प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

अत: हे जिनवाणी! भव्य जीवों ने तुमको अपने हृदय में धारण कर रखा है, क्योंकि तुम आत्मानुभव करने का, आत्मा की प्रतीति करने का तथा किसी को दु:ख न हो, ऐसा मार्ग बताने में समर्थ हो।

एकमात्र जिनवाणी ही संसार से पार उतारने में समर्थ है एवं सच्चे सुख को पाने का रास्ता बताने वाली है।

हे जिनवाणी रूपी सरस्वती! मैं तेरी ही आराधना रात-दिन करता हूँ, क्योंकि जो व्यक्ति तेरी शरण में जाता है, वही सच्चा अतीन्द्रिय आनंद पाता है।

जिस वीतराग वाणी का ज्ञान हो जाने पर सारी दुनिया का सही ज्ञान हो जाता है, उस वाणी को मैं मस्तक नवाकर सदा नमस्कार करता हूँ।

दुख से बचने का उपाय आत्मघात नहीं, आत्मसाधना है ।

जो होता सब अच्छा होता

इक राजा का इक मंत्री जो चतुर विवेकी प्रतिभावान।
जो होता सब अच्छा होता, यह कहता था वचन महान॥

तभी एक तलवार सभा में लेकर आया एक लुहार।
राजा जी की जिससे अंगुली, कटकर बही खून की धार॥
वही वचन तब मंत्री बोला, सो राजा ने गुस्सा धार।
मंत्री जी को जेल दिया तब, मंत्री कहा वही उद्‌गार॥

फिर कुछ दिन के बाद गये वन, राजा करने एक शिकार।
पर वे वन में जब भटके सो, उनको पकड़ लिये सरदार॥
राजा की बलि शीघ्र चढ़ेगी, किन्तु कटी अंगुली को देख।

राजा को तब मुक्त किया सो, वापिस आये राजा देश॥
सत्य हुआ मंत्री का कहना, राजा जी यह सोच विचार।
मुक्त कराकर मंत्री जी को, बुलवाये फिर अपने द्वार॥
हमें हुआ जो सब वह अच्छा, पर तुमको कैसे शुभ यह जेल।

मंत्री बोले सुनिये राजा, अगर न होती मुझको जेल॥
तो मैं अंग आपके जाता, देख हमारे पूरे अंग।
हमको बलि सरदार चढ़ाकर, बिछुड़ा देता जीवन संग॥
राजा फिर मंत्री से बोले, तुम सच कहते अपनी बात।

जो होता सब अच्छा होता, जान गये हम सच्ची बात॥
क्षमा मांगते हम मंत्री जी, आप करो हमको अब माफ।
अपनी जिम्मेदारी ले लो, चलिये राज सभा में आप॥

भोजन

पहले दर्शन बाद में भोजन,
पहले पूजन बाद में भोजन।
पहले स्वाध्याय बाद में भोजन,
पहले दान बाद में भोजन।
संयम सहित करें हम भोजन,
तप वृद्धि करने को भोजन।
आसक्ति तज करें सु भोजन,
रहकर मौन करें हम भोजन।
द्रव्यशुद्ध हो क्षेत्र शुद्ध हो,
काल शुद्ध हो भाव शुद्ध हो।
शुद्धि सहित करें हम भोजन,
शान्तचित्त हो करें सु भोजन।
नहीं हमारा यह जड़ भोजन,
करें ज्ञानमय नित ही भोजन॥

बाईस अभक्ष्य

ओरा घोरबरा निसिभोजन, बहुबीजा बेंगन संधन ।
पीपर बर ऊमर कठूंबर, पाकर जो फल होइ अजान ।
कंदमूल माटी विष आमिष, मधु, माखन अरू मदिरापान ।
फल अति तुच्छ, तुसार चलित रस, जिनमत ए बाईस अखान ।।

1. ओला, 2 द्विदल, 3. रात्रिभोजन, 4. बहुबीजा, 5. बैंगन, 6. मुरब्बा
7. पीपरफल, 8. बड़फल, 9. ऊमरफल, 10. कठूमर, 11. पाकरफल
12. अजानफल, 13. कंदमूल, 14.माटी, 15. विष, 16. मांस, 17. शहद
18. मक्खन, 19. शराब, 20. अतिसूक्ष्म फल, 21. बर्फ, 22. चलित रस

कहना...!!!

हाथ से

हाथ जोड़कर विनय करूंगा,
सेवा और सहयोग करूंगा ।
हर्ष सहित मैं दान करूंगा,
आवश्यक श्रमदान करूंगा ।
अरे गंदगी साफ करूंगा,
अवसर पर हथियार उठाकर,
विघ्न-अरक्षा दूर करूंगा ।
रखकर हाथ पे हाथ अहो मैं,
प्रभु सम आतमध्यान करूंगा ।

मुख से

सांची प्यारी बात कहूंगा,
निंदा, चुगली नहीं करूँगा।
नहीं किसी की हंसी उड़ाऊं,
सुंदर भजन गीत मैं गाऊं।
आदर और विनय से बोलू,
सोच समझ,
अच्छा मुख खोलूं ॥

पैरों से

धर्म कार्य में दौड़ जाऊं
सेवा करने दौड़ा जाऊं।
बड़े पुकारे जल्दी जाऊं,
दुखी पुकारे जल्दी जाऊं।
नहीं किसी को ठोकर मारुँ,
नहीं चलूंगा टेड़ी चाल।
कोई प्राणी दुख न पाये,
पांव रखूंगा सदा सम्हाल ॥

भगवान बनेंगे !!

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे ।
सप्तभयों से नहीं डरेंगे ।।

सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे ।
जीव-अजीव पहिचान करेंगे ।।

स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे ।
निजानन्द का पान करेंगे ।।

पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे ।
गुरुजन का सम्मान करेंगे ।।

जिनवाणी का श्रवण करेंगे ।
पठन करेंगे, मनन करेंगे ।।

रात्रि भोजन नहीं करेंगे ।
बिना छना जल काम न लेंगे ।।

निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे ।
मोह भाव का नाश करेंगे ।।

रागद्वेष का त्याग करेंगे ।
और अधिक क्या ? बोलो बालक !
भक्त नहीं, भगवान बनेंगे ।।